आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१८ * अंक-२ * अक्टूबर-२०२३

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● जो (जिन वचन) ललितमें ललित हैं, जो शुद्ध है, जो निर्वाणके कारणका कारण हैं, जो सर्व भव्योंके कर्णोंको अमृत हैं, जो भवभयरूपी अरण्यके उग्र दावानलको शांत करनेवाला जल है, और जो जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं, ऐसे इन जिन भगवानके सद्वचनोंको (सम्यक् जिनागमको) मैं प्रतिदिन वंदता हूँ ।२०२०।

(श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार टीका, श्लोक-१५)

● जगत्, अर्थात् जगतके जीवों ! अनादि संसारसे लेकर आज तक अनुभव किये गये मोहको अब तो छोड़ो और रसिकजनोंको रुचिकर, उदय हुआ जो ज्ञान उसको आस्वादन करो, क्योंकि इस लोकमें आत्मा वास्तवमें किसी प्रकार भी अनात्मा (परद्रव्य)के साथ कदापि तादात्म्यवृत्ति (एकत्व)को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आत्मा एक है वह अन्य द्रव्यके साथ एकतारूप नहीं होता ।२०२१।

(श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार-टीका, कलश-२२)

● मायारूप रोगकी दवा शास्त्र, पुण्यका कारण शास्त्र, सर्वपदार्थोंको देखनेवाला नेत्र शास्त्र, और सर्वप्रयोजनोंका साधक शास्त्र है ।२०२२।

(श्री अमितगति आचार्य, योगसार प्राभृत, चरित्र अधिकार, गाथा-७३)

● हे जीव ! जिनेन्द्र भगवानकी वाणीका रात-दिन निरंतर अभ्यास करने योग्य है । कैसी है जिनवाणी ? प्रमाण और नयके अनुकूल जीवादि पदार्थोंका वर्णन करती है इसलिये निपुण है । और प्रमाणनय-निक्षेप निरुक्ति अनुयोग आदि भेदों द्वारा जीवादि पदार्थोंका विस्तारसे वर्णन करती है इसलिये विपुल है और पूर्वापर विरोधादिक दोष से रहित है इसलिये शुद्ध है और वह जिस अर्थको बताती है वह किसी भी प्रकार फिर नहीं सकता (बदल नहीं सकता) ऐसा होने से अत्यन्त दृढ़पनेके कारण निकाचित है और जिनवाणीसे अन्य उत्कृष्ट तीन लोकमें कोई नहीं इसलिये अनुत्तर है और सर्वजीवोंको हितरूप है, किसीको अहितकर नहीं है इसलिये सर्वहित है और द्रव्यमल जो ज्ञानावरणादिक और भावमल जो रागादिक तथा क्रोधादिक उनका नाश करती है इसलिए कलुषहर है । ऐसी जिनवाणी ही निरंतर अभ्यास करने योग्य है । जिनवाणी बिना जीवको कोई शरण नहीं इसलिये सर्वप्रकारसे हितरूप जानकर मनुष्यजन्म जिनागमकी आराधना द्वारा सफल करो । २०२३। (श्री शिवकोटि आचार्य, भगवती आराधना, १०१)

वर्ष-18
अंक-2

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2079
October
A.D. 2023

श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

अध्यात्म-अमृतके आश्रयसे
अतीन्द्रिय आनंदमय अनुभूतिका अभिसिंचन

प्रवचनके प्रारम्भमें ही पूज्य गुरुदेवश्री प्रमुदित होते कहते हैं कि यह समयसार गाथा ३२० की टीका रचकर श्री जयसेनाचार्यदेवने बहुत गम्भीर और सूक्ष्म भाव जगतके समक्ष खोल दिये हैं। आत्माके गहन स्वभावकी बात बहुत सूक्ष्म है लेकिन ध्यानमें रखकर सुनते–समझने पर महाकल्याणकारी है।

आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्धज्ञान अथवा शुद्धज्ञानपरिणति जीव नेत्रकी भांति अकारक-अवेदक होनेसे वह बंध-मोक्ष और बंध-मोक्षके कारणभूत शुभाशुभ कर्मोदय और निर्जराको जानता ही है, क्योंकि शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जीव कर्तृत्व-भोक्तृत्व तथा बंध-मोक्षके कारण और परिणामसे शून्य है।

तब मोक्षका कारण कौन ?–यह बात समझाते हुए कहते हैं कि उपशम आदि पांच भावोंमें जो शुद्धजीवत्वशक्तिलक्षण शुद्धपारिणामिकभाव है वह निष्क्रिय होनेसे, बंधके कारणभूत रागादिकी क्रियासे और मोक्षके कारणभूत शुद्धपरिणतिकी क्रियासे रहित होनेके कारण शुद्धपारिणामिकभाव मोक्षका कारण नहीं है। पुनश्च जो उदयभाव है वह रागभाव है और राग है वह बंधका कारण होनेसे उदयभाव भी मोक्षका कारण नहीं है। लेकिन

ज्यों श्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप स्वभावसे। परमागम
ज्ञाता भी त्यों ही त्यागता, परद्रव्यको निज भावसे॥३६३॥ श्री समयसार

शुद्धपारिणामिक निष्क्रिय तत्त्व जिसका विषय है और समस्त रागादिकी क्रिया ऐसी शुद्धभावनारूप परिणति अर्थात् उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव वह शुद्ध-उपादानकारणभूत होनेसे मोक्षके कारण है।

इस प्रकार मोक्षका कारण शुद्धोपयोगरूप परिणति है लेकिन निष्क्रिय ध्रुवतत्त्व मोक्षका कारण नहीं ऐसा कहकर शुद्धपरिणतिसे शुद्धपरिणतिका विषय ऐसा त्रिकाली ध्रुव तत्त्व कथंचित् भिन्न है ऐसा कहा, इसलिये शुद्ध परिणति वह ध्येयरूप नहीं लेकिन निष्क्रिय त्रिकाली ध्रुवतत्त्व ध्येयरूप है, वह ही सम्यग्दर्शनका विषय है।

शुद्ध त्रिकाली निष्क्रिय परमपारिणामिकभावको विषय बनाने पर सम्यग्दर्शन होता है कि जो सुखानुभूतिलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप है, और वह ज्ञान ऐसा जानता है इसलिये ध्येयका ध्यान करनेवाला धर्मी ऐसा ध्याता है कि 'जो सकलनिरावरण-अखंड-एक-प्रत्यक्ष प्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्धपारिणामिक-परमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य वह ही मैं हूं।'

जिज्ञासु जीवोंकी सुखानुभूतिकी तृप्ति हेतु, इस अलौकिक गाथा-टीका पर सोनगढमें आठ प्रवचन देकर पूज्य गुरुदेवश्रीने अध्यात्म-अमृतके प्रपातका अभिसिंचन किया था।

आत्माका स्वभाव ज्ञानस्वरूप है वह रागको करे और भोग करे वह उसका स्वभाव नहीं है। शरीरादि परका करे या भोग करे वह तो आत्माका स्वरूप नहीं लेकिन रागको करे या वेदन करे ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्माका स्वरूप नहीं है ऐसा यहाँ श्री समयसारकी जयसेनाचार्यरचित 'तात्पर्यवृत्ति' टीकामें कहा है।

ज्यो नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहि कारक, नहीं वेदक अहो!
जाने हि कर्मोदय, निरजरा बंध त्यों ही मोक्षको॥३२०॥

चक्षुके दृष्टांतसे अकारक-अवेदक ज्ञानस्वभाव

जिस प्रकार नेत्र-कर्ता-दृश्य वस्तुको संधूकण करनेवाला पुरुष अग्निरूप वस्तुको करता है वैसा करता नहीं, और तप्तायमान लोहेके गोलेके पींडकी भांति अनुभवरूपसे वेदन करता नहीं है; उसी प्रकार शुद्ध ज्ञान भी अथवा अभेदसे शुद्धज्ञानपरिणत जीव भी स्वयं शुद्ध-उपादानरूप करता नहीं और वेदन भी करता नहीं है xxx मात्र दृष्टि ही नहीं लेकिन क्षायिकज्ञान भी निश्चयसे कर्मोंका अकारक और अवेदक भी है। ऐसा होता हुआ

ज्यों श्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप स्वभावसे।
सुदृष्टि त्यों ही श्रद्धता, परद्रव्यको निज भावसे॥३६४॥

(शुद्धज्ञानपरिणत जीव) क्या करता है ? किसको जानता है ? बंध-मोक्षको। मात्र बंध-मोक्षको नहि, शुभ-अशुभरूप कर्मोदयको तथा सविपाक-अविपाकरूप और सकाम-अकामरूप दो प्रकारकी निर्जराको भी जानता है।

भगवान आत्माका ऐसा स्वभाव है कि पुण्य-पापके रागको करता नहीं और वेदन भी करता नहीं है। जैसे नेत्र-आंख जिस वस्तुको देखता है वह दृश्य वस्तुको, जैसे अग्निको जलानेवाला पुरुष अग्निको करता है वैसे नेत्र दृश्य वस्तुको देखता है लेकिन करता नहीं है और जैसे तप्त लोहाका गोला उष्णरूप परिणमता है वैसे नेत्र दृश्य पदार्थको देखता है लेकिन उसका वेदन करता नहीं है। उसी प्रकार शुद्ध ज्ञानका ऐसा स्वभाव नहीं है कि पुण्य-पापके भावको करे या भोग करे और शुद्धज्ञानपरिणत जीव स्वयं पुण्य-पापके भावको करता नहीं अथवा वेदता भी नहीं है। मैं शुद्ध हूँ ऐसी पवित्रताके परिणामरूप परिणमित जीव दया-दानके परिणामको करता नहीं और वेदन भी करता नहीं है।

शुद्ध जीव वस्तु पुण्य-पापके रागको करता नहीं, वेदता नहीं, ऐसा कब सिद्ध होगा ?– कि ज्ञानस्वभावको ध्येय बनाकर परिणमित हो तब रागका अकारक अवेदक है। अर्थात् कि सम्यग्दर्शनमें जहाँ निर्मल परिणमन हुआ है उस जीवको दया-दानका विकल्प आये उसे वह दूरसे जानता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन हुआ वह जीव राग-द्वेषको शुद्धउपादानरूप करता नहीं है। द्रव्यस्वभाव तो अकारक और अवेदक ही है लेकिन ऐसा परिणमन हुए बिना द्रव्यस्वभावका निर्णय किस प्रकार आये ? उसका कर्ता नहीं और भोक्ता भी नहीं है।

व्यवहाररत्नत्रयका विकल्प आये, अशुभराग भी आये लेकिन धर्मात्मा उसका कर्ता अथवा भोक्ता नहीं, क्योंकि जो स्वभावरूप परिणमित हो वह विभावरूप कैसे परिणमित होगा ? जिसकी पर्यायमें धर्मका परिणमन हो वह जीव–उस जीवका ज्ञान दया-दान-व्रत-भक्ति आदिके रागको करे नहीं और भोक्ता नहीं है।

शुद्धज्ञानपरिणत जीव क्या करता है ?

अब कहते है कि केवलज्ञान हुआ, जैसा सर्वज्ञपना शक्तिरूप था वह पर्यायमें आया ऐसा क्षायिकज्ञान भी जोगके कंपनका अकर्ता है–ऐसा सिद्धांत कहकर पुनः साधककी बात

(शेष देखे पृष्ठ २० पर)

यों ज्ञान-दर्शन-चरितमें निर्णय कहा व्यवहारका।
अरु अन्य पर्यय विषयमें भी इस प्रकार हि जानना।।३६५।।

श्री नियमसार शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(श्लोक - ६०-६१)

वैसे तो शुद्धात्मतत्त्वका उपदेश तो सभी तीर्थंकर भगवंतोंने एकसमान किया है, लेकिन उसमें नजदीकमें हो गये वर्तमान प्रवर्तमान शासनके नायक महावीर भगवान होनेसे आचार्यदेवने उनका नाम लेकर बात की है। कैसे है वीतरागी महावीर परमात्मा ?–कि जिनके चरणकमल भक्तिभरे इन्द्रोंके मुकुटोंकी शाश्वत रत्नमालासे पूजनिक है। इन्द्रोंकी रत्नमाला शाश्वत होती है। भगवानके आत्मामें तो केवलज्ञानादि अनंत चैतन्यरत्न शाश्वत प्रकट है और सामने भक्ति करनेवाले इन्द्र भी शाश्वत रत्नमालासे पूजते हैं। वे महावीर भगवानने ऐसा उपदेश दिया कि, सभी आत्मा परिपूर्ण है, जैसा मैं हूँ वैसा ही तू है, मेरे और तेरे स्वभावमें कोई अंतर नहीं है। स्वभावको भूलकर तूने ऐसा माना कि रागादि मेरा स्वरूप है, वह मिथ्या मान्यता ही संसारका मूल कारण है। 'मैं भगवान जैसा परिपूर्ण नहीं लेकिन मैं विकारी और अपूर्ण हूँ' ऐसा मानकर और तेरे और मेरे आत्मामें अंतर किया इसलिये ही संसार है। भगवानके और अपने आत्माके बीचमें श्रद्धाका अंतर माना वह भगवान कहांसे होगा ? मैं भगवान जैसा नहीं लेकन मैं तो विकारी-पामर–ऐसा मानता है लेकिन स्वभावसे तो स्वयं भगवान जैसा ही है–ऐसा विश्वास जो नहीं करता है वह ही संसारका कारण है– इसप्रकार महावीर भगवानने शुद्धात्माका जो उपदेश दिया यह उपदेशसे शुद्धात्माको समझे तो संसारका नाश होकर मुक्ति हुए बिना न रहे। ऐसा शुद्धात्माका उपदेश पाकर संत भवसे पार हो जाते है।

भगवान महावीरका ऐसा उपदेश है कि ''हे जीव ! तू क्षणिक विकार जितना ही अपूर्ण नहीं है, इसलिये 'रागादि मेरे' ऐसी मान्यता रख दे। तेरा स्वभाव तो सिद्ध भगवान जैसा परिपूर्ण है उसे पहिचान और संसारके विकल्पोंको दूर करके ऐसे आत्माका अनुभव कर। शुद्ध आत्माके आनंदमें अनुभव बिना मुक्ति नहीं है।'' ऐसे उपदेशको मानकर उस रूप चलनेवाले जीव अवश्य मुक्तिका भोगी होता है। मुक्तदशामें आत्मा स्वयंके स्वभावके परम आनंदका ही भोक्ता है। यहां संसारमें भी कोई जीव शरीर—पैसा आदि परवस्तुको भोगता नहीं है। मात्र राग-द्वेषकी आकुलतासे भोगता है, और राग-द्वेषरहित शुद्धात्म-स्वभावका भान करके मुक्तदशामें आत्माके निर्विकारी आनंदको सादिअनंतकाल तक भोगता है।

वैराग्य भावना

(श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

अब, नयोंके कथनका संङ्कोच करते हैं—

एवं विविहणेहिं, जो वत्थु ववहरेगि लोयम्मि।
दंसणणाणचरित्तं, सो साहदि सग्गमोक्खं च॥२७८॥

अर्थ : जो पुरुष, लोकमें इस तरह अनेक नयोंसे वस्तुको व्यवहाररूप कहता है, सिद्ध करता है और प्रवृत्ति करता है, वह पुरुष दर्शन-ज्ञान-चारित्रको और स्वर्ग-मोक्षको सिद्ध करता है–प्राप्त करता है।

भावार्थ :–प्रमाण और नयोंसे वस्तुका स्वरूप यथार्थ सिद्ध होता है। जो पुरुष, प्रमाण और नयोंका स्वरूप जानकर वस्तुको यथार्थ व्यवहारूप प्रवृत्ति कराता है, उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी और उसके फल स्वर्ग-मोक्षकी सिद्धि होती है।

अब, नयोंके कथनका उपसंहार करते हैं। वस्तुतः तो शुद्धदृष्टि द्वारा स्वद्रव्यके अवलम्बनसे ही मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रकट होता है परन्तु ज्ञान है, वह निश्चय-व्यवहारके जितने प्रकार हैं, उन्हें जानता है। यहाँ ज्ञानकी स्पष्टता, वह मोक्षका कारण है—ऐसा कह दिया है। कोई कहता है कि अकेला ज्ञान, मोक्षका कारण कैसे ? तो उससे कहते हैं कि मोक्षमार्गमें सम्यग्ज्ञान आता है और उस ज्ञानमें सात नय आते हैं। संयोग, विकार, अविकार, द्रव्य, गुण, पर्यायको वह ज्ञान, यथार्थरूपसे जान लेता है और ऐसा जाननेवाला वह ज्ञान स्वसन्मुख हो सकता है और उस ज्ञानमें आत्माको पकड़कर स्थिर होनेकी सामर्थ्य है; इसलिये यहाँ ज्ञानकी मुख्यता कही गयी है।

देखो, यह सम्यग्दृष्टि जीवकी बारह भावनाओंका वर्णन है। मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ–ऐसा यथार्थ निर्णय हुए बिना यह लोकभावना इत्यादि नहीं हो सकती। लोक में छहों द्रव्य स्वतंत्र भिन्न-भिन्न है; कोई किसीके आधीन नहीं है। वीतरागी द्वारा कथित इस यथार्थ तत्त्वका श्रवण करनेवाले लोग भी इस लोकमें विरले हैं—ऐसा अब कहेंगे।

अब, कहते हैं कि तत्त्वार्थको सुनने, जानने, धारणा और भावना करनेवाले विरले हैं—

चारित्र-दर्शन-ज्ञान किञ्चित् नहिं अचेतन विषयमें।
इस हेतुसे यह आतमा क्या हन सके उन विषयमें ?॥३६६॥

विरला णिसुणहि तच्चं, विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।
विरला भावहिं तच्चं, विरलाणं धारण होदि॥२७९॥

अर्थ :–संसारमें विरले पुरुष, तत्त्वको सुनते हैं, सुनकर भी तत्त्वको यथार्थ विरले ही जानते हैं, जानकर भी विरले ही तत्त्वकी भावना अर्थात् बारम्बार अभ्यास करते हैं और अभ्यास करने पर भी तत्त्वकी धारणा विरलोंके ही होती है।

भावार्थ :–तत्त्वार्थका यथार्थ स्वरूप सुनना, जानना, भावना करना और धारण करना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। इस पंचमकालमें तत्त्वके यथार्थ कहनेवाले दुर्लभ हैं और धारण करनेवाले भी दुर्लभ हैं।

जगतमें वीतरागी तत्त्वका श्रवण करनेवाले जीव बहुत अल्प होते हैं। तीर्थंकरोंके समयमें लाखो-करोड़ों जीव तत्त्वका श्रवण करनेवाले होते हैं, तथापि उस समय भी अज्ञानी जीव बहुत होते हैं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेवने दिव्यध्वनि द्वारा जो छह द्रव्यों, देव-शास्त्र-गुरु, कारण-कार्यकी स्वतंत्रता, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध इत्यादिका प्रतिपादन किया है, उस वीतरागी तत्त्वको सुननेवाले जीव जगत्में हमेशा अल्प ही होते हैं–ऐसा ही जगत्का स्वभाव है। पूर्वापर विरोधरहित यथार्थ चैतन्यस्वभावकी दृष्टिकी बात सुननेवाले जीव भी जगत्में थोड़े ही हैं। जगत्के सभी जीव सत्य समझ लें—ऐसा कभी नहीं होता है।

अहो ! संसारमें जीवोंको सत्य-श्रवणकी भी दुर्लभता है। सत्यका श्रवण हो—ऐसा पूर्वके पुण्यकी भी दुर्लभता हैं और वर्तमानमें उस प्रकारकी योग्यतावाले जीवोंकी भी दुर्लभता है। सर्वज्ञदेव द्वारा देखे गये लोकके छह द्रव्य, कारण-कार्यभाव इत्यादि सब वर्णन करनेके पश्चात् शास्त्रकार कहते हैं कि इस सत्य तत्त्व सुननेवाले जीव, जगत्में बहुत थोड़े हैं।

श्रवण करनेवाले जीवोंमेंसे भी तत्त्वको यथार्थरूपसे जाननेवाले विरले ही हैं। जिस प्रकार जंगलमें बकरियों और भेड़ोंके झुण्ड तो बहुत होते हैं परन्तु वैसे झुण्ड सिंह अथवा बाधके नहीं होते है। यद्यपि कहीं-कहीं सिंहके झुण्ड भी होते हैं किन्तु वे भेड़-बकरियों जितने नहीं होते, इसी प्रकार प्रथम तो सत्यको जाननेवाले जीव विरले ही हैं। लाखों-करोड़ों जीव एक साथ समझ जाएँ—ऐसा यह काल नहीं है। अभी तो हलाहल काल आ गया है; इसमें तत्त्वकी बहुत ही विरलता हो गयी है।

चारित्र-दर्शन-ज्ञान किञ्चित् नहिं अचेतन कर्ममें।
इस हेतुसे यह आतमा क्या हन सके उन कर्ममें?॥३६७॥

देखो, इस तत्त्वके श्रवणकी और ज्ञानकी दुर्लभता है। इसे सुननेवाले और जाननेवाले विरले हैं—ऐसा कहा है परन्तु कहीं उनका सर्वथा अभाव नहीं है। अभी अध्यात्मके नाम पर कितने ही लोग बातें करते हैं परन्तु उन्हें सच्चे देव-शास्त्र-गुरुके स्वरूपका भी भान नहीं हैं। तत्त्वकी यथार्थ बात सुनानेवालोंकी भी दुर्लभता है और सुननेवालोंकी भी दुर्लभता है तथा सुनकर भी यथार्थ तत्त्वको जाननेवाले जीव विरले हैं।

तत्त्वको सुनकर तथा जानकर भी जीव अंतरंगमें बारम्बार उसका अभ्यास करते हैं तथा उसका अभ्यास करके भी तत्त्वकी निर्दोष धारणा तो विरले जीवोंको ही होती है।

श्रीमद् योगीन्दुदेवने योगसारमें कहा है कि–

''विरलाः जानन्ति तत्त्वं बुधाः विरलाः निशृण्वन्ति तत्त्वम्।
विरलाः ध्यायन्ति तत्त्वं जीव विरलाः धारयन्ति तत्त्वम्॥६६॥''

दिगम्बर जैन शासनकी सनातन सत्य बात सुनना ही जीवोंको दुर्लभ है। सुनके पश्चात् यथार्थ तत्त्वको समझकर, सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले जीव भी बहुत विरल हैं। अहो ! सभी प्रकारसे भूलरहित परम सत्य–ऐसा वस्तुस्वरूप सुननेवाले और समझानेवाले जीव भी जगत्में विरले हैं। वस्तुस्वभावको लक्ष्यमें लेनेके पश्चात् अंतरंगमें बारम्बार उसके अनुभवका अभ्यास करनेवाले जीव भी दुर्लभ हैं। तत्त्वको जाननेके पश्चात् भी अंतरंगमें निर्विकल्प होनेकी दुर्लभता है और अखंडधारारूपसे आराधनाको टिकाए रखना तो विरले जीवोंको ही होता है।

देखो, आचार्यदेवने दो हजार वर्ष पहले इस दुर्लभताका वर्णन किया है तो अभी तो उससे भी विशेष दुर्लभता है। तत्त्वार्थका यथार्थ स्वरूप सुनना, जानना, चिन्तवन करना और धारण करना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। इस पंचमकालमें तत्त्वज्ञानके यथार्थ वक्ता, दुर्लभ हैं तथा उसे धारण करनेवाले भी दुर्लभ हैं।

इस कालमें चैतन्यस्वभावकी दृष्टिपूर्वक यथार्थ तत्त्वते वक्ता प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है। तीनों काल उनकी दुर्लभता है परन्तु इस कालमें तो महादुर्लभता है तथा सुननेवाले जीव भी विरले होते हैं। जगत्में सच्चे देव-शास्त्र-गुरुको पहचाननेवाले जीव भी विरले होते हैं। सच्चे ज्ञानी वक्ता, सत्य सुनानेवाले मिलें तो उन्हें पहचाननेवाले जीव बहुत दुर्लभ हैं। जगत्के जीव अपने-अपने कुल-सम्प्रदायके गुरुको मान रहे हैं और कुदेव-कुगुरुका पोषण कर रहे हैं।

(शेष देखे पृष्ठ १३ पर)

चारित्र-दर्शन-ज्ञान किञ्चित् नहिं अचेतन कायमें।
इस हेतुसे यह आतमा क्या हन सके उन कायमें?॥३६८॥

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-२६ (गाथा-२६)

रागमें एकत्व बंधका मूल, रागसे भिन्नत्व मुक्तिका मूल

भगवान श्री कुंदकुंद आचार्यने बंध अधिकारमें जो बात कही है उसको श्री अमृतचंद्राचार्यने टीकाके कलशमें ली है और इसी बातका यहाँ पंडित आशाधरजीने आधार दिया है। पंडित आशाधरजी गृहस्थाश्रममें थे। उन्होंने श्री पूज्यपादस्वामीकी गाथाकी टीका की है उसमें इस गाथा ''मम'' से बंध होता है और ''निर्मम''से मुक्त है, उसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि भगवान निर्लेप, अबंध, शुद्ध चैतन्यतत्त्वकी सत्ताके साथ रागादिका मिलान करते है कि यह रागसे मुझे लाभ है उसका अर्थ यह कि राग मेरा है और मैं उसका हूँ ऐसा जो मिथ्या अभिप्राय करता है वह जीव कर्मसे बाध्य है।

अनादिकालसे जीवने मिथ्यात्वका व्यापार किया है, त्यागी हुआ, बावा हुआ, अरे ! दिगम्बर मुनि हुआ फिर भी मिथ्यात्वका त्याग किया नहीं। शुक्ललेश्याके परिणाम करके नववीं ग्रैवेयक तक हो आया लेकिन शुक्ललेश्याके परिणाम वह मैं नहीं–ऐसा भेदज्ञान किया नहीं इसलिये कर्मबंधन मिटा नहीं।

वैसे, शरीरकी क्रिया बंधका कारण नहीं है, पाँचों इन्द्रियाँ बंधका कारण नहीं, कर्म होने योग्य जगत्के पुद्गल परमाणु कर्मबंधका कारण नहीं, जीव-अजीवका घात भी बंघका कारण नहीं है। मात्र एक भगवान आत्मा स्वयंके चैतन्य उपयोगरूप स्वभावकी दृष्टि छोड़कर पुण्य-पापके परिणामको अपनी सत्ताके साथ जोड़ता है, एकत्व मानता है वह ही कर्मबंधका कारण है।

चैतन्यके उपयोगमें रागके भागका त्रिकाल अभाव स्वभाव है ऐसा न मानकर अभिप्रायमें रागका एकत्व करना वह ही अनंत संसारके बंधका कारण है। राग मिथ्यात्वके बंधका कारण नहीं लेकिन रागकी एकता मानना वह मिथ्यात्वके बंधका कारण है।

समयसारमें जयचंद पंडितने बहुत सुंदर अर्थ किया है कि अभ्यंतरकी अपेक्षासे तो समकिती अबंध ही है और सम्यग्दर्शन रहित जीव बाह्यके चाहे कितने त्यागमें वर्तता हो

है ज्ञानका, सम्यक्तका, उपघात चारितका कहा।
वहाँ और कुछ भी नहिं कहा उपघात पुद्गलद्रव्यका॥३६९॥

लेकिन उसके अभिप्रायमें ऐसा है कि इसका मैंने त्याग किया और यह शुभराग मुझे लाभदायक है तो यह मान्यतावाला परमधर्मका त्यागी है और अकेला अधर्मका भोगी है। यह तो भाई ! वीतरागका मार्ग है। यहाँ किसीकी सिफारीश नहीं चलती है।

अहा ! भाई ! भगवान चैतन्यज्योत, ज्ञानकी मूर्ति, चैतन्यसूर्य है। इस चैतन्यके प्रकाशके नूरमें तेजमें रागका शुभविकल्प उत्पन्न हो तो वह अंधकार है। यह प्रकाश और अंधकारमें एकत्व मानना बस, वह ही मिथ्यात्व और अनंत संसारमें भटकनेका मूल है। बंधका कारण यह एक ही है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई बंधका कारण नहीं है।

अब, यहाँ आत्मानुशासनके ११०वें श्लोकका आधार देते हैं। बहुत उत्तम श्लोक है। मैं अकिंचन हूँ (अर्थात् किंचित् मात्र रागादि मेरे नहीं) मेरा कुछ नहीं है। मैं चैतन्य भगवान रागादि विकल्पसे रहित हूँ और विकल्प भी मेरे नहीं है। मैं तो जाननहार-देखनेवाला मात्र हूँ। स्त्री, पुत्र परिवार तो मेरे नहीं है। वह तो मेरेसे बहुत दूर है लेकिन, मेरी ही पर्यायमें हुए रागादि भी मेरे स्वरूपमें नहीं है। वे विकल्प लेशमात्र भी मेरे नहीं है ,

मुनिराज कहते हैं कि बस ! मैं अकिंचन हूँ ऐसी भावना करके बैठे रहो कि अंतरमें स्थिर हो और तीनलोकके स्वामी बनो।

लोगोंने ऐसी बात सुनी नहीं है, इसलिये इस बातसे बिलकुल अनजान है। अनजान (बेखबर) (बे का अर्थ गुजरातीमें दो) अर्थात् दुगुनी खबरवाले नहीं किन्तु अनजान है और मानता है कि हम धर्म करते हैं।

श्रोता :–किन्तु व्रत-भक्ति आदि कब करना ?

भाई ! यह भाव बीचमें आयेंगे लेकिन वह मोक्षमार्ग नहीं है। वह संवर, निर्जरा या मोक्षका कारण नहीं है। जब तक स्वरूपमें पूर्ण स्थिर न हो सके तबतक बीचमें शुभभाव आते है लेकिन वह मोक्षमार्ग नहीं है। एकबार स्वरूपमें स्थिर हुआ वह क्रमशः केवलज्ञानको प्राप्त करेगा ही। स्वरूपमें स्थिरताके अतिरिक्त अन्य कोई केवलज्ञानका उपाय नहीं है।

राग और जड़की क्रियासे पृथक् हूँ ऐसी प्रथम श्रद्धा कर! राग और देहकी क्रिया मेरेमें नहीं है और मैं राग और देहकी क्रियामें आता नहीं हूँ। ज्ञायकभाव रागमें थोड़े आते

जो जीवके गुण हैं नियत वे कोई नहिं परद्रव्यमें।
इस हेतुसे सद्दृष्टि जीवको राग नहिं है विषयमें॥३७०॥

है ! भगवान आत्मा देहकी पर्यायकी उत्पादमें थोड़ा आता है ! तीनकालमें कदापि नहीं। फिर भी राग और देहकी क्रियामें ममत्व करना वह ही एक संसार बंधनका मूल है।

यह आत्मानुशासनके ११०वें श्लोकमें परमात्मा होनेका अल्प रहस्य दर्शाया है। मैं अकिंचन हूँ ऐसी भावनापूर्वक स्वरूपमें स्थिर हो जाय वह योगी अल्पकालमें परमात्मा-तीनलोकका नाथ बनता है।

अल्प भी यथार्थ ग्रहण करे तो अल्पमें भी पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करनेका सामर्थ्य है। क्योंकि अल्प भी सत्य है। उससे विपरीत अल्प भी विपरीत मान्यता ग्रहण करे उसमें अनंता निगोदके भव करनेका सामर्थ्य है।

यहाँ संक्षिप्तमें परमात्मा होनेका रहस्य बतलाया है। रागकी एकता तोड़कर स्वभावकी एकतामें रहना वह ही एक परमात्माकी प्राप्तिका उपाय है। इसमें सभी शास्त्रोंका रहस्य आ जाता है। बहुत उत्तम श्लोक है।

संसारकी उमंग समाप्त हो ऐसी यह बात है। एक डोक्टर कहते थे कि अभी (युवावस्थामें) यह महाराजकी बात मत सुनना नहीं तो अभीसे संसारकी होश खो देगा इसलिये वृद्धावस्थामें यह बात सुनना।

लोगोंने वीतरागमार्गको विघटित विखंडित कर दिया। जैसे गद्देकी बीचमें गुड़ रखा हो और गर्मीमें गुड़ पीघल जाए और गुड़का सभी रस गद्देमें उतर जाय और धूपमें सुखनेके लिये रखे तो गुड़ खानेके लिये कुत्ता गद्देको फाड डाले, सुखशैयाको विघटित कर दे वैसे अज्ञानी जीवोंने भगवान आत्मामें सुखसे रह सके ऐसी दृष्टि-ज्ञान-रमणताके मार्गको विघटित विखंडित कर दिया है। एक संप्रदायवाले कहते हैं कि शिखरजीकी यात्रा करे तो भव कम होता है, तो दूसरा कहता है कि मंदिर बंधवाये तो भवसे छूट जायेगा, तो तीसरा कहता है कि पंचमहाव्रतके परिणामका पालन करे तो भव छूट जायेगा। यह सब बातें मिथ्या है। यह तो सभी रागके-पुण्य परिणाम है उससे बंध होगा एक भी भव कम नहीं होगा।

भगवान आत्माकी पूर्णानंद निधिमें अंतर ऐक्यता द्वारा ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, शुक्लध्यान और केवलज्ञान एकधारासे प्रगट होता है। तीनकाल-तीनलोकमें अन्य कोई मार्ग है नहीं। वीतरागमार्गसे ही वीतरागता प्रगट होती है। रागके मार्गमें वीतरागता प्रगट नहीं होती है।

अरु राग, द्वेष, विमोह तो जीवके अनन्य परिणाम हैं।
इस हेतुसे शब्दादि विषयोंमें नहीं रागादि हैं॥३७१॥

अर्धलोकके स्वामी शक्रेन्द्र और ईशान इन्द्र जैसे महा पुण्यवंत जीव भी भगवानके पास यह वीतरागताकी बात सुनने जाते है और कहते हैं कि हे नाथ ! आपका मार्ग ही सत्य है।

अहा ! सर्वज्ञ वीतराग परमात्माकी वाणीका रहस्य यहाँ संक्षिप्तमें दर्शा दिया है। ''आत्माका मोक्ष अंतर एकतासे होता है'' यह ही रहस्य है। रागकी पृथक्ता और स्वभावकी एकता करना वह ही मोक्षमार्ग है। समयसारमें भी ''एकत्व-विभक्त आत्माकी'' बात की है उसमें यह बात आ गई।

अनंत परमात्मा हो चुके हैं, वर्तमानमें विराजमान है और अनंत परमात्मा भविष्यमें होंगे उन सभीका रहस्य यह एक है कि भाई ! रागकी उपेक्षा कर ! स्वभावकी अपेक्षा कर और स्थिर हो जा ! बस मुक्ति...अन्य कोई मुक्तिका उपाय नहीं है।

अब ''ज्ञानार्णव''का आधार देकर यह बात कहते हैं कि ''रागी जीव कर्मसे बाध्य है और वीतरागी जीव कर्मोंसे मुक्त है।'' यहाँ रागीका अर्थ रागके साथ एकत्व माननेवाला जीव। सम्यग्दृष्टिको भी राग तो है लेकिन रागके साथ एकत्व नहीं है इसलिये वे कर्मोंसे बाध्य नहीं है। सम्यग्दृष्टिको पांच इन्द्रियके भोग, लड़ाई आदि सभी राग होते हैं लेकिन उसमें एकत्व नहीं है...एकबार भिन्न हुआ वह एकमेक नहीं होता है, भिन्न ही रहता है।

वीतरागी जीव कर्मोंसे मुक्त है और रागी जीव कर्म बांधता है। बस यह ही बंध-मोक्ष सम्बन्धी जिनेन्द्रका संक्षेपमें उपदेश है। वीतरागप्रभु विराजमान हो अथवा न हो, वाणी हो अथवा न हो किन्तु भगवानका उपदेश यह है। यहाँ संक्षिप्तमें उसका सार बतलाया है।

(क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ९ का शेष भाग) (वैराग्य भावना)

कुदेव-कुलिंगको वंदन करना, वह विनय मिथ्यात्वका पोषण है। जिन जीवोंने सर्वज्ञ वीतरागदेवकी परम्पराको तोड़कर विपरीत मार्ग चलाया है, वे जीव, जैनशासनके शत्रु हैं और उन्हें माननेवाला जीव भी अनन्त संसारमें परिभ्रमण करनेवाला है।

देखो, सत्य तत्त्वकी जगत् में दुर्लभता है—यह जानकर स्वयं उसकी महिमा लाकर, प्रयत्न करके सत्य समझनेके लिये यह बात है। (क्रमशः) ✻

को द्रव्य दूसरे द्रव्यमें उत्पाद नहिं गुणका करे।
इस हेतुसे सब ही दरब उत्पन्न आप स्वभावसे॥३७२॥

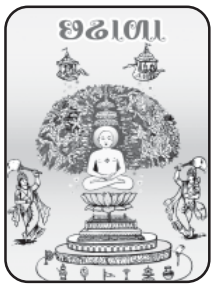

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा ६-७)

बंध और संवरकी पहिचानमें भूल

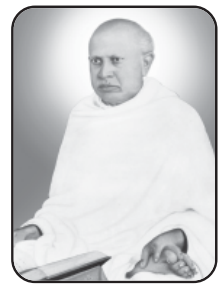

'आतमहितहेतु विरागज्ञान' ऐसा कहा है; रागको आत्माके हितका हेतु नहीं कहा। विरागज्ञान अर्थात् रागके अभावरूप ज्ञान, वह मोक्षमार्ग है, उसमें निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह तीनों विराग है–राग रहितका है। स्वरूपमें स्थिरता होने पर रागका अभाव होता है उसे भगवानने वैराग्य कहा है; उसमें तो सिद्ध भगवान जैसा अतीन्द्रिय आनंद है, उसमें दुःख या कष्ट कैसा ? जिसमें दुःख या कष्ट लगे वह तो आर्त्तध्यान है, वह धर्म नहीं है। धर्ममें कष्ट नहीं होता लेकिन आनंद होता है। जिसे दुःख दिखता है और आनंद नहीं दिखाई देता उसे स्वयंमें धर्म हुआ ही नहीं है, वीतरागविज्ञान प्रकट हुआ नहीं है। धर्मको जो दुःखदायक और कष्टदायक मानता है उसे धर्मकी अरुचि है, वह तो रागको सुखरूप मानकर उसे रुचिसे सेवन करता है—ऐसे विपरीतभावके कारण ही जीव संसारमें दुःखी हो रहा है।

अरे, वीतरागतामें वह दुःख कैसे हो ? दुःख तो रागमें है। वीतरागता तो आत्माका स्वभाव है, उसमें तो परम सुख है। अहा ! ज्ञान-वैराग्यके बलसे जो स्वयंके निजघरमें ठहरे उनके अतीन्द्रिय आनंदकी तो क्या बात !–रागसे वह आनंद कल्पनामें न आ सके–जैसे सिद्धका सुख ऐसा ही यह सुख...उसमें कष्ट कैसा और अरुचि कैसी !–चाहे शरीरको सिंह, बाघ खाता हो ! ऐसा आनंद जिसमें भरा है वह संवरतत्त्व है। उसे पहिचाने और उसको प्रकट करे तभी दुःख मिटे और धर्म होगा। ऐसे तत्त्वके ज्ञान बिना यथार्थ त्याग अथवा वैराग्य नहीं होता। रागादि बंधभावको जो लाभप्रद माने उसको विरागज्ञान होता नहीं है। और विरागज्ञान (वीतरागविज्ञान) बिना आत्माका हित होता नहीं। इसलिये हे जीव ! तू तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूपको पहिचान कर वीतरागविज्ञान प्रकट कर।

पुद्गलदरब बहु भाँति निंदा-स्तुतिवचनरूप परिणमे।
सुनकर उन्हें 'मुझको कहा' गिन रोष तोष जु जीव करे।।३७३।।

निर्जरा और मोक्षतत्त्वमें अज्ञानीकी भूल तथा मिथ्याज्ञानका स्वरूप

रोके न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान॥७॥

आत्माका स्वभाव निराकुल आनंदसे परिपूर्ण और इच्छाके अभावरूप है; लेकिन ऐसे निजस्वभावकी शक्तिको अज्ञानी खो बैठा है–भूल गया है, इसलिये वह इच्छाको रोकता नहीं है, अर्थात् कि इच्छाके निरोधरूप तप–कि जिसमें आत्माके आनंदका अनुभव है और जो निर्जराका कारण है उसे अज्ञानी पहिचानता नहीं है; वह तो ऐसा मानता है कि अनाज नहीं खाया इसलिये तप हो गया और निर्जरा हो गई;—लेकिन ऐसा तपका अथवा निर्जराका स्वरूप नहीं है। अंतरके ध्यानसे चैतन्यका प्रतपन हो अर्थात् कि विशेष शुद्धता हो वह तप और निर्जरा है। और निराकुलतारूप मोक्षतत्त्व है–ऐसे निर्जरा और मोक्षतत्त्वको अज्ञानी पहिचानता नहीं हौ और विपरीत मानता है।

इस प्रकार (गाथा दो से सातमें कहा उस प्रकार) सातों तत्त्वोंमें अज्ञानीको विपरीत प्रतीति है; ऐसी विपरीत श्रद्धा सहितका जो कुछ जानपना है वह सभी अज्ञान है और दुःखदायक है–इस प्रकार जानकर वह त्याग करने योग्य है।

प्रथम ढालमें चारगतिके जो महा दुःखोंका वर्णन किया उसका कारण मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है, उसमें तत्त्वोंकी विपरीत श्रद्धा और विपरीत ज्ञानरूप मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञानका स्वरूप बतलाया, और अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप आठवीं गाथामें कहेंगे। किसलिये? कि उसे पहिचानकर उसका त्याग करनेके लिये।

भाई, तेरी निजशक्ति अपार है, वह इच्छा द्वारा रुकी हुई है; स्वरूपमें ठहरने पर वह इच्छा रुकती है और निजशक्ति खीलती है उसका नाम निर्जरा है और वह मोक्षका कारण है। सम्पूर्ण निराकुलता होने पर पूर्ण सुखरूप मोक्षदशा प्रकट होती है। 'मैं ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा हूं, परमें मेरा सुख नहीं, शुभाशुभ इच्छाएँ मेरा स्वरूप नहीं।–ऐसी पहिचान बिना इच्छा कदापि रुकती नहीं और आनंद कदापि प्रकट नहीं होगा। इच्छा बिनाका आत्माका सुखस्वभाव उसके अनुभवसे ही संवर-निर्जरा-मोक्ष होता है। अज्ञानी शुभरागसे या देहकी क्रियासे संवर-निर्जरा मोक्ष होना मानता है, वह भूल है।

पुद्गलदरब शब्दत्वपरिणत, उसका गुण जो अन्य है।
तो नहिं कहा कुछ भी तुझे, हे अबुध! रोष तूं क्यों करे?॥३७४॥

मोक्षके कारणरूप निर्जरा सम्यग्दृष्टिको ही होती है; शेष अकाम-निर्जरा तो अज्ञानीको भी होती है, उसकी यह बात नहीं है। ज्ञान और इच्छा भिन्न है, इच्छा तो आत्मशांतिसे विरुद्ध है, उसमें आकुलता है। जिसने शुभराको मोक्षका साधन माना उसने आकुलतासे मोक्षको माना है, निराकुलतारूप मोक्षकी उसे खबर नहीं है। मोक्ष तो सम्पूर्ण निराकुल है; निराकुलताका कारण भी निराकुलभाव ही होता है; आकुलता कोई निराकुलताका कारण नहीं होता है। शुभ इच्छा भी आकुलता है, उसे मोक्षका कारण मानने पर कारण-कार्यमें विपरीतता होती है। ऐसी विपरीत श्रद्धा और ज्ञान जीवको दुःखका कारण होता है; इसलिये उसे छोड़ना नहीं चाहिये।

जीव इच्छा करे और उसमें सुख माने तो उस इच्छाको छोड़कर शांतस्वभावका कब अनुभव करेगा ? इच्छा तो दुःख है–'क्या इच्छत ? खोवत सबे, है इच्छा दुःखमूल।' अरे जीव ! तू तेरे चैतन्य-वैभवको भूला तब तुझे परमेंसे सुख लेनेकी इच्छा हुई। लेकिन भाई, परमेंसे सुखकी इच्छा करने पर सुखका सम्पूर्ण भंडार खो जायेगा, भूल जाता है और आत्मा दुःखी होता है। परमें सुख है ही नहीं, चैतन्यमें ही सुख है–ऐसा समझकर निजस्वरूपमें ठहरना और परकी इच्छाको रोकना वह ही शांति है, वह ही निर्जरा और मोक्षमार्ग है।

जीव-अजीव आदि तत्त्वको अज्ञानी पहिचानता नहीं है मानता है कि रुपिया बिना मैं मर जाऊँगा, शरीर बिना मैं मर जाऊँगा–ऐसा जो मानता है। अरे ! तू तो चैतन्यसे जीवित जीव है न ! संयोगसे और शरीरसे तो तू पृथक् है, और उस ओरकी इच्छा बिना भी तू जीवित है। पर बिना मैं जीवित न रह सकूँ—ऐसी मिथ्याबुद्धिसे तू भावमरणके दुःखको भोग रहा है। ऐसी भूल जीव अनादिसे कर रहा है और उसके फलका दुःख भी अनादिसे तू भोग रहा है। भूलको टालकर सुखी होनेका यह उपदेश है।

स्वयंके स्वरूपकी सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान बिना शुभरागरूप व्यवहारक्रियाएँ और व्यवहारका जानपना जीवने अनंतबार किया लेकिन वे सभी मिथ्या है; मिथ्यात्वपूर्वक जीव जो कोई भाव करे वह दुःखदायक ही है। श्री बुधजनपंडित रचित एक दूसरी छहढाला है, उसमें भी कहते है कि—

सम्यक् सहज स्वभाव आपका अनुभव करना,
या बिन जप-तप व्यर्थ कष्टके मांही पडना;

शुभ या अशुभ जो शब्द वह 'तूँ सुन मुझे' न तुझे कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे कर्णगोचर शब्दको॥३७५॥

कोटि बातकी बात अरे! बुधजन उपर धरना,
मनवचतन शुचि होय ग्रहो जिनवृषका शरना।

करोड़ों बातका सार यह है कि आत्माके सहज स्वभावका अनुभव करना; उसके बिना सब व्यर्थ है।

देखो, समयसार आदि महान शास्त्रोंमें तो यह बात है ही; किन्तु इससे पूर्व रचित यह छहढाला जैसे पुस्तकोंमें भी यह ही बात की है। उन पंडितोंका कथन भी आचार्यों–अनुसार ही है, उसमें वीतरागविज्ञानका ही पोषण है। चैतन्यका वीतराग-विज्ञान ही सुखरूप है, और उस वीतराग विज्ञानरूप धर्म साधकर अनादिकालसे जीव मुक्त होने पर आता है। वीतराग-विज्ञानवंत जीवों जगतमें सदाकाल होते ही हैं।

आत्माको आनंद चाहिये न ? तो वह आनंद कही बाहरमें नहीं है, आत्मामें ही आनंद है। इसलिये ज्ञानी कहते है कि 'हे जीव ! तू आत्मामें रुचि कर...आत्मामें ही सदा प्रीतिवंत बन।' आत्माका ज्ञान बिना सब दुःखदायक ही है। सात तत्त्वोंकी यथार्थ पहितान करने पर आत्माकी पहिचान आ जाती है।

(१) जीव सदा उपयोगलक्षणरूप है–'जीवो उवओगलखणो णिच्चा' वह शरीरादि अजीवसे पृथक् तत्त्व है।

(२) पुद्गल आदि अजीव तत्त्व है, उसमें ज्ञान नहीं है। यह जीव और अजीव दोनोंका काम पृथक् स्वयंमें ही है।

(३) मिथ्यात्वादि भाव है वह आस्रव है; पुण्य-पाप भी आस्रवमें समाहित है। वह आस्रवभाव जीवको दुःखदायक है।

(४) सम्यग्दर्शनादि वीतरागभावसे कर्मोंका संवर होता है। वह सम्यग्दर्शनादि भाव जीवको सुखरूप है, मोक्षके कारण है।

(५) मिथ्यात्वादि भाव वह बंधके कारण है; शुभराग भी बंधका कारण है, वे मोक्षका कारण नहीं है।

(६) सम्यग्दर्शनपूर्वककी शुद्धतासे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

(शेष देखे पृष्ठ २९ पर)

शुभ या अशुभ जो रूप वह 'तू देख मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे चक्षुगोचर रूपको।।३७६।।

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

ज्ञान अधिकार

ज्ञान लोकालोक सर्व ज्ञेयको जानता है। प्रत्येक जीवका स्वभाव जाननेका है। किसीको करता नहीं है, बिगाड़ता नहीं है; किसीका लेता नहीं है, किसीको कुछ दे नहीं सकता। लोकालोकको जाने ऐसा ज्ञानका सामर्थ्य है। रागको हटाना अथवा रखना ऐसी शक्ति ज्ञानकी नहीं है, परन्तु जानना ही ज्ञानकी शक्ति है। ज्ञाता रहे वहाँ राग मिट जाता है, रागको मिटाना नहीं पड़ता।

प्रत्येक शरीरका आत्मा सदा ज्ञानका पिण्ड है। सर्वज्ञस्वभावी है तथापि वर्तमान संसार अवस्थामें अपने अपराधसे अज्ञानरूप हो रहा है। तब भी तीनकाल–तीनलोकको जाननेकी उसकी शक्ति कहीं जाती नहीं है। दूसरोंकी महिमा करे, परन्तु यह चिदानन्द पूर्णस्वभाव किसीके द्वारा नष्ट नहीं होता—ऐसी शक्ति निरन्तर है, उसकी महिमा तो कर ! जिसप्रकार बादलों द्वारा सूर्यको ढँक लेने पर भी सूर्यका प्रकाश कही चला नहीं जाता, वैसे ही ज्ञानावरणसे ज्ञान कहीं जाता नहीं है—नष्ट नहीं होता। ज्ञानका ज्ञानरूप होना वह अनुभव है।

श्री समयसारमें कहा है कि :—

ज्ञानका ज्ञानरूप होना वह सम्यग्ज्ञान है,
ज्ञानका सम्यक्त्वरूप होना वह सम्यग्दर्शन है,
ज्ञानका स्थिररूप होना वह सम्यक्–चारित्र है।

आत्मा त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है उसके श्रद्धा–ज्ञान–रमणता कर, उसमें सभी समाधान आ जाते हैं। तेरी चैतन्यशक्ति विद्यमान है उसमें एकाग्र होकर उसे खोल। देखो, ज्ञानकी शक्ति ऐसी है कि अनन्त गुणोंको व्यक्त जाने। ज्ञानके बिना ज्ञेय ज्ञात नहीं होते। चैतन्यके प्रकाशमें ही समस्त ज्ञेय ज्ञात होते हैं। ''हम हैं'' ऐसे अपने अस्तित्वकी प्रतीति जड़को नहीं है, उसे प्रकाशित करनेवाला तो ज्ञान है, ज्ञान जाननेवाला है और ज्ञेय ज्ञात होने योग्य है। ज्ञानके बिना ज्ञेयोंको जानेगा कौन ? इसलिए ज्ञानकी प्रधानता कही है। आत्मा अनन्तगुण

शुभ या अशुभ जो गन्ध वह 'तू सूंघ मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे घ्राणगोचर गन्धको॥३७७॥

स्वरूप वस्तु है, परन्तु उसका ज्ञानगुण असाधारण है इसलिए ज्ञानमात्र कहा है। ज्ञानके बिना आत्माका निर्णय कौन करता? समयसारादि ग्रन्थोंमें आत्माको ज्ञानमात्र ही कहा है :—

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किम् ।
पर भावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ।।

भगवान आत्मा ज्ञान है, स्वयं ही ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान अनन्त गुणोंमें व्याप्त हो रहा है। ऐसे ज्ञानस्वरूप लक्षण द्वारा आत्माकी प्रसिद्धि होती है, इसलिए आत्माको ज्ञानमात्र कहकर उसकी पहिचान कराई है। जैसे मन्दिरको ''श्वेतमन्दिर''—ऐसा कहकर उसकी पहिचान कराईं जाती है। अब वहाँ मन्दिरमें दूसरे रंग भी हैं, परन्तु दूरसे श्वेत रंगकी मुख्यता भासित होनेसे उसे श्वेत रंगकी प्रधानतासे मन्दिरकी पहिचान कराते हैं। वैसे ही आत्मामें अनन्त गुण हैं, परन्तु उनमें ज्ञानगुण द्वारा आत्माकी पहिचान होती है, इसलिए आत्माको ज्ञानमात्र कहा है। भगवान आत्मा ज्ञान द्वारा स्वयं अपनेसे ज्ञात होता है। ज्ञानप्रसिद्ध है, इसलिए उसके द्वारा आत्माकी पहिचान कराईं है।

तथा एक–एक गुणमें अनन्त शक्ति है। एक गुण दूसरे अनन्तगुणोंमें व्यापक है। ज्ञानस्वरूपका निश्चय करना उसका नाम धर्म है। एक समयमें तीनकाल–तीनलोकको जाननेकी शक्ति है, उसे प्रतीतिमें लेकर एकाग्र होनेसे एकसमयमें तीनकाल–तीनलोकको जाने ऐसी शक्ति पर्यायमें विकसित हो जाती है।

वस्तुका जैसा स्वभाव हो वैसा ज्ञान जानता है, परन्तु वहाँ ''मैं यह करता हूँ''—ऐसा भ्रमसे अज्ञानी मानता है। दाहिनेके बाद बायाँ पैर उठेगा ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु ''मैंने पैर उठाया''—ऐसा अज्ञानी भ्रमसे मानता है, क्योंकि वह ज्ञानके स्वभावको नहीं जानता। आत्मामें अनन्त गुण हैं और प्रत्येक गुणकी अनन्त शक्तियाँ हैं, गुणकी पर्यायें अनेक हैं—उन सबको ज्ञान जानता है। सामान्यरूपसे वस्तु एक है और उसके गुण–पर्याय अनेक हैं—इसप्रकार ज्ञान सबको जानता है ऐसी उसकी शक्ति है। श्रद्धाका स्वभाव प्रतीति करनेका, चारित्रका स्वभाव स्थिर होनेका, ज्ञानका स्वभाव जाननेका, अग्निका स्वभाव उष्ण,—ऐसा ज्ञान जानता है। ऐसे ज्ञानस्वभावका निर्णय करे तो उसे अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा।

ज्ञानकी प्रधानतासे आत्माका वर्णन ''ज्ञायक''रूप से किया है। आत्मा ज्ञायक है,

शुभ या अशुभ रस कोई भी, 'तू चाख मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे रसनगोचर स्वादको।।३७८।।

ज्ञान सबको जाननेवाला है। ज्ञान सर्व वस्तुस्वरूपका निर्णय करता है। श्रद्धा तो निर्विकल्प प्रतीतिरूप है। उसे जाननेवाला ज्ञान है। इस प्रकार अनन्त गुणोंमें ज्ञानगुणकी प्रधानता है। ज्ञान द्वारा स्वसंवेदन होता है। आत्माका स्वसंवेदन होनेसे प्रथम ज्ञानका अंश शुद्ध हुआ। चौथे गुणस्थानमें ज्ञानका स्वसंवेदन प्रकट हुआ वह सम्यक् मति–श्रुतज्ञान है, वह अंश है और उसका पूर्ण विकास होनेपर सर्व लोकालोकको जाने ऐसा सामर्थ्य प्रकट होता है। स्वानुभवकी ओर जो अंश चला वह बढ़कर केवलज्ञान होता है, रागके द्वारा केवलज्ञान नहीं होता। परज्ञेय हैं इसलिए ज्ञान उन्हें जानता है—ऐसा नहीं है, परन्तु ज्ञानपर्याय स्वयं वैसे ज्ञेयाकाररूप होती है। परज्ञेय कहीं ज्ञानमें नहीं आते, शब्दादि परज्ञेयोंके कारण ज्ञानपर्याय नहीं होती। मति–श्रुत ज्ञान हो अथवा केवलज्ञान पर्याय हो, वह प्रत्येक ज्ञान अपनी ज्ञानपर्यायसे ही है, परके कारण वह ज्ञान नहीं है।

ज्ञेय नष्ट होनेपर ज्ञान नष्ट हो जाए ऐसा नहीं है। राग हुआ, रागका ज्ञान हुआ, तथापि ज्ञानकी पर्यायमें रागका ख्याल और राग वह मैं नहीं हूँ—ऐसा ज्ञानका ख्याल रहता है, इसलिए ज्ञेयके कारण ज्ञान नहीं है।

जितने ज्ञेय जाननेमें आते हैं उतने भेद ज्ञानकी पर्यायमें पड़ते हैं वह ज्ञानके कारण हैं। राग और पर ज्ञेय जाननेमें आते हैं वह ज्ञानका अस्तित्व नहीं है, ज्ञान तो ज्ञानस्वभावसे ही होता है। अनेक ज्ञेय हैं इसलिए ज्ञान अनेक भेदरूप नहीं हुआ है। स्व–पर प्रकाशक स्वभावके अस्तित्वसे ही ज्ञान अनेक प्रकारको जानता है। दया, दान, भक्ति, व्यवहाररत्नत्रयके विकल्प आदि अनेक प्रकारको जाननेरूप ज्ञानकी अवस्था होती है, वह ज्ञानके कारण है, रागके कारण (अनेक प्रकार) नहीं हैं। कर्मोदयके कारण अनेक प्रकार नहीं हैं। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ५ का शेष भाग) (समयसार प्रवचन)

करते है कि साधक-शुद्धज्ञानपरिणत जीव क्या करता है? धर्मी हुआ है, शुद्ध ज्ञानरूप परिणमन हुआ है ऐसा जीव क्या करता है?–कि जो राग आता है उसको जानता है। चैतन्य भगवान ज्ञानका प्रकाशपुंज है वह ज्ञानका प्रकाश करे या रागको करे या वेदन करे? ज्ञानपरिणत जीव रागको और बंधको दूर रहकर जानता है। बंध भी अस्तिरूप है, नहीं ऐसा नहीं, लेकिन चौथे गुणस्थानवाला धर्मी जीव रागके भावको और बंधको दूर रहकर जानता है, उसमें मिलकर करे या वेदता नहीं है। उसमें मिले और करे–यह तो मिथ्यादृष्टि है।

(क्रमशः) ✻

तू मोक्षपंथमें आ जा

श्रीगुरु शिक्षा देते हैं कि हे भव्य! आत्माके अनुभवके लिये सावधान होना...शूरवीर होना... जगतकी प्रतिकूलताको देखकर कायर मत होना... प्रतिकूलताके सामने मत देखना, शुद्ध आत्माके आनंदके सामने देखना। शूरवीर होकर उद्यमी होकर आनंदका अनुभव करना। 'हरिका मार्ग है शूरवीरका....' वे प्रतिकूलतामें और पुण्यकी मीठाशमें कभी रुकते नहीं, उनको एक स्वयंके आत्मार्थका ही कार्य है। वे भेदज्ञान द्वारा आत्माको सर्व प्रकारसे पृथक् अनुभव करते हैं। ऐसा अनुभव करनेका यह अवसर है—भाई! उसमें शांतिसे तेरी चेतनाको अंतरमें एकाग्र करके त्रिकाली चैतन्य-प्रवाहरूप आत्मामें मग्न कर...और रागादि समस्त बंधभावोंको चेतनसे पृथक् अज्ञानरूप जान। इस प्रकार सर्व प्रकारसे भेदज्ञान करके अपने एकरूप शुद्ध आत्माकी साधना कर। मोक्षको साधनेका यह अवसर है।

अहा! वीतरागका मार्ग....जगतसे पृथक् है। जगतके भाग्य है उन संतोंने ऐसा मार्ग प्रसिद्ध किया है। ऐसा मार्गको प्राप्त कर हे जीव! भेदज्ञान द्वारा शुद्ध आत्माको अनुभवमें लेकर तू मोक्षपंथमें आ जा।

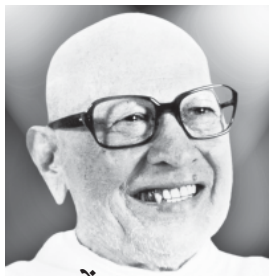

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–शास्त्र द्वारा आत्माको जाना और बादमें परिणाम आत्मामें मग्न हुए–इन दोनोंमें आत्माके जाननेमें क्या अन्तर है?

उत्तर : अनन्तरगुणा अन्तर है। शास्त्रसे जानपना किया—यह तो साधारण धारणारूप जानपना है और आत्मामें मग्न होकर अनुभवसे जानना–यह तो प्रत्यक्ष वेदनसे जानपना है। अतः इनमें भारी अन्तर है।

प्रश्न :–समयसार जैसे महान अध्यात्मशास्त्रको पढ़-सुनकर भी लोग आगे क्यों नहीं बढ़ते?

उत्तर :–क्रियाकाण्डकी दृष्टिवालेको ऐसा लगता हैं कि अमुक व्यक्ति समयसार सुनता है, फिर भी आगे नहीं बढ़ता। कुछ बाह्य त्याग, तप, व्रतादिक क्रियायें करे तो ही उसे आगे बढ़ा हुआ दिखाई पड़ता है; किन्तु भाई ! समयसारका पठन, मनन, श्रवण करके परद्रव्यकी भिन्नता, परद्रव्यका अकर्तृत्व, रागादि भावोंमें हेयबुद्धि और अन्तरमें विराजित परमात्मशक्तिका उपादेयपना निरन्तर उसकी श्रद्धा-ज्ञानमें चल रहा है और उससे जो पर्यायमें सुधार हुआ है, वह क्या आगे बढ़ना नहीं है? अन्दरमें श्रद्धा-ज्ञानमें सत्यके संस्कार पड़ते हैं, वही आगे बढ़ना है। श्रद्धा-ज्ञानको सम्यक् किये बिना जो त्याग-व्रतादि किया जाता है, उसके सम्बन्धमें आत्मानुशासनकार श्री गुणभद्राचार्य तो कहते हैं कि आत्मभान रहित जो भी बाह्य तपादि है, वह सब अज्ञानीका बालतप है। अन्तरंग मिथ्यात्वके त्याग बिना बाह्य त्यागको सच्चा त्याग नहीं कहते। अन्दरमें श्रद्धा-ज्ञान-स्वरूपाचरणचारित्रमें जो सुधार होता है, वही सच्चा सुधार है और वही आगे बढ़ना है; परन्तु बाह्यदृष्टिवन्तको वह दृष्टिगोचर नहीं होता। ✻

प्रश्न :–मात्र द्रव्यानुयोगका अभ्यास करनेसे क्या निश्चयाभासी हो जाते हैं?

उत्तर :–नहीं, द्रव्यानुयोगके अभ्याससे निश्चयाभासी नहीं होते; पर व्यवहार है ही नहीं, ऐसा निषेध करनेसे निश्चयाभासी होते हैं। इसलिए कहा है कि जिसे निश्चयका अतिरेकहो, उसे व्यवहार ग्रहण करना और जिसे व्यवहारका व्यतिरेक हो, उसे निश्चय ग्रहण करना चाहिए

शुभ या अशुभ जो स्पर्श वह 'तू स्पर्श मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे कायगोचर स्पर्शको॥३७९॥

प्रश्न : जो मुनि आहारक शरीर प्रकृति बांधे, उसके वह उदयमें आवे ही आवे—ऐसा कोई नियम है ?

उत्तर : नहीं, कोई आहारक शरीर नामकर्म बाँधे, परंतु उनके उदयका अर्थात् आहारक शरीरकी रचनाका प्रसंग कभी भी न आवे, बीचमें ही उस प्रकृतिका छेद करके मोक्ष प्राप्त कर ले; परंतु तीर्थंकर नामकर्ममें ऐसा नहीं बनता, वह तो जिसके बंधता है उसके नियमसे उदय होता है। आहारक शरीरकी प्रकृति सातवें या आठवें गुणस्थानमें बँधती है, किन्तु उदय छठे गुणस्थानमें होता है। कोई जीव क्षपकश्रेणी माँडते समय आहारक शरीर प्रकृति बाँधे और सीधा केवलज्ञान प्राप्त कर ले तो छठे गुणस्थानमें वापस गिरनेका और आहारक शरीरकी रचनाका प्रसंग ही नहीं बनेगा। छठे गुणस्थानमें आहारक शरीरकी रचनावाले मुनिवर एक साथ अधिक से अधिक ५४ ही होते हैं।

प्रश्न : ग्यारह अंगधारी द्रव्यलिंगी मुनिकी क्या भूल रह जाती है ?

उत्तर : वह स्वसन्मुख दृष्टि नहीं करता, अतिन्द्रिय प्रभुके सन्मुख दृष्टि नहीं करता।

प्रश्न : क्या द्रव्यलिंगी मुनि स्वसन्मुखताका प्रयत्न करता ही नहीं ?

उत्तर : नहीं, उसके धारणामें सब बातें आती हैं, किन्तु अन्तर्मुख प्रयत्न नहीं हो पाता।

प्रश्न : *द्रव्यलिंगीकी भूमिकाकी अपेक्षा सम्यक्त्वसन्मुखकी भूमिका कुछ ठीक है क्या ?*

उत्तर : हाँ द्रव्यलिंगी तो सन्तोषित हो गया है और सम्यक्त्व–सन्मुखतावाला तो प्रयत्न करता है।

प्रश्न : मुनिको आहारकी वृत्ति उठने पर भी मुनिदशा रहती है, तो फिर वस्त्र रखनेकी वृत्ति उठे तो उसमें क्या दोष है ?

उत्तर : मुनिको संयमके हेतु शरीरके निभावके लिए आहारकी वृत्ति उठती है और वस्त्र रखनेका भाव तो शरीरसे ममत्वका प्रतिक है; अतः वस्त्र रखनेकी वृत्ति रहते हुए मुनिदशा नहीं रहती।

प्रश्न : क्या द्रव्यलिंगी शुद्धात्माका चिन्तवन नहीं करता ?

उत्तर : शुद्धात्माका चिन्तवन तो करता है, परन्तु आत्ममय होकर नहीं करता–ऐसा जानना।

शुभ या अशुभ गुण कोई भी 'तू जान मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर गुण अरे॥३८०॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *आप कहते हैं तब सरल लगता है, किन्तु प्रयत्न करते हैं तब कठिन लगता है और होता नहीं है। तो क्या करना ?*

समाधान :—धीरजसे करनेका है। न हो तो अकुलाना नहीं। ज्ञायककी भावना, बारम्बार ज्ञायकका रटन तथा ज्ञायकके विचार करना किन्तु अकुलाना नहीं। उसमें उतावल करके अन्य कुछ करनेका कोई अर्थ नहीं है। अनादिसे एकत्वका अभ्यास है इसलिए कठिन लगता है; परन्तु स्वभाव तो अपना ही है इसलिए कठिन नहीं है; एकत्वबुद्धिके कारण कठिन हो पड़ा है।

अपना स्वभाव समीप है। कहीं बाहर ढूँढ़ने जाना पड़े ऐसा नहीं है। पराधीन नहीं है। कोई दे तो हो ऐसा भी नहीं है। अपने पास है, लेकिन अपने पुरुषार्थकी कमीके कारण (प्राप्त) नहीं होता। दृष्टि इतनी अधिक बाहर है कि अंतरमें नहीं जा सकता और स्थूलतामें चला जाता है।

प्रश्न :— *ज्ञानीको पहिचाने कैसे ? मुमुक्षुकी भूमिकामें, एक क्षयोपशम ज्ञानवाला हो और एक सच्चा आत्मज्ञानी हो तो, उन दोनोंको मुमुक्षु कैसे पहिचाने ? दोनोंके बीच कैसे अन्तर करे ?*

समाधान :—दोनोंका परिचय करनेसे तथा अंतर पहिचाननेसे तफावत खयालमें आ सकता है।

सच्चा मुमुक्षु हो उसके हृदयनेत्र ऐसे हो चुके होते हैं कि ज्ञानीकी अपूर्व, अंतरसे भीगी हुई, प्रतिक्षण भेदज्ञान करती तथा अनुभवमेंसे निकलती आत्मस्पर्शी वाणीका ग्रहण कर सकते हैं। उसके हृदयनेत्र वैसे भावोंको ग्रहण करनेयोग्य हो गये होते हैं।

ज्ञानीका क्षयोपशम ज्ञान हो, तथापि वह अनुभूतियुक्त ज्ञान है। ज्ञानी अंतरसे बोलते हों वह जुदा ही निकलता होता है। जैसे कि गुरुदेव कहते हों कि ''तू तो जुदा है....जुदा है.....यह तेरा नहीं'' ऐसे जो अनुभवमेंसे बोले उसकी भाषा, उसका ढलन निराला होता है।

शुभ या अशुभ जो द्रव्य वह 'तू जान मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर द्रव्य रे॥३८१॥

जो मात्र क्षयोपशमसे बोलते हैं किन्तु अंतरमें स्वानुभूति नहीं है उस वाणीका वजन कहाँ जाता है ? उसकी परिणति क्या काम करती है ? अर्थात् उसके अंतरकी दिशा कैसी है ? हृदय कैसा भींजा हुआ है और वाणी किस प्रकारकी निकलती है ?—वह यदि उसमें मुमुक्षुता हो और विशेष परिचय करे तो, पहिचान सकता है। मात्र क्षयोपशमज्ञानसे जो वाणी निकलती हो वह और ही प्रकारसे निकलती है। क्षयोपशमसे बोलनेवालेकी भाषा एवं झुकाव अमुक प्रकारका आया करता है।—इसप्रकार दोनोंका अंतर मुमुक्षु हो वह भीतरसे ग्रहण कर लेता है।

प्रश्न :— *श्रीमद् राजचंद्रजीने अनेक जगह लिखा है कि जीवको आत्मप्राप्ति नहीं होनेमें मूल कारण उसकी स्वच्छंदता है। तो स्वच्छंदता कहनेका तात्पर्य क्या है ?*

समाधान :—स्वच्छंदी जीव अपनी मति-कल्पनासे मार्गका निर्णय कर लेता है कि मार्ग इसीप्रकार है, मैं जो मानता हूँ वही सच्चा है। अथवा बहुतसे शास्त्रोंका अभ्यास किया हो तो शास्त्रमें इसप्रकार आता है—आत्मा ऐसा ही है—वैसा अपनी मतिसे जो निर्णय किया हो, वहीं का वहीं स्वच्छंदवृत्तिसे अटक जाता है अथवा अन्यत्र कहीं भी अटकता हो, परन्तु उसे किसीसे पूछनेका नहीं रहता, क्योंकि 'मैं सब जानता हूँ, मुझे सब आता है' ऐसा उसे हो जाता है।

जिन्होंने मार्गको जाना है वैसे अनुभूतिवान् ज्ञानी क्या कहते हैं वह विचारनेका उसे अवकाश नहीं रहता और जिसे मति-कल्पना नहीं हो उसे अवकाश रहता है कि विशेष ज्ञानी कौन हैं और वे क्या कहते हैं ?

गौतमस्वामी–इन्द्रभूति वेदांतवादी थे। इन्द्रने आकर उनकी परीक्षा की तब उनकी इतनी तैयारी थी कि 'यह क्या कह रहे हैं ?' उन्हें आश्चर्य लगा कि मुझे इतना सब आने पर भी यह तो मैं नहीं जानता ! यह जो प्रश्न पूछ रहे हैं कि द्रव्य कितने....(इत्यादि) वह मुझे कुछ क्यों नहीं आता ? मैं तो ऐसा मानता था कि मैं सर्वज्ञ हूँ....ऐसे आश्चर्य लगा जिससे वहाँ (भगवान्के पास) जानेको तत्पर हुआ। अंतरमें इतनी योग्यता हुई कि 'मैं नहीं जानता', तो वहाँ जानेका अवकाश रहा। परन्तु 'मैं सब कुछ जानता हूँ' वैसे मानता हो उसे कोई अवकाश नहीं रहता।

यह जानकर भी मूढ जीव पावे नहिं उपशम अरे!
शिव बुद्धिको पाया नहीं वह पर ग्रहण करना चहे॥३८२॥

बाल विभाग

पुण्य-पापकी विचित्रता

(श्री महावीरस्वामीके समय में श्री जम्बूस्वामीसे पूर्व हुए कामदेव पदवी धारक, तद्भव मोक्षगामी श्री जीवंधरस्वामीका चरित्र)

राजपुरी नगरीके राजा जीवंधर स्वयंकी रानीमें इतने आसक्त हुए कि उन्होंने अपना राज्य मंत्री काष्ठांगारको देकर विषयभोगमें लीन हो गये। इस ओर दुष्ट विचारसे काष्ठांगारने राजाको बंदी बनानेका आदेश दे दिया। यह बात मालूम होने पर राजाने गर्भस्थ रानीको केकीयंत्रमें बिठाकर आकाशमार्गसे अन्यत्र रवाना कर दिया। केकीयंत्रने रानीको स्मशानभूमिमें पहुंचा दिया। वहाँ पर जीवंधरकुमारका जन्म हुआ। दैवयोगसे एक देवीने आकर रानीको आश्वस्त किया कि पुत्रका लालन-पालन राजकुमारोचित होगा। इस ओर जीवंधरके पुण्यसे गंधोत्कट सेठ अपने मृत पुत्रका अंतिम संस्कार करने आये थे और अवधिज्ञानी मुनिके कथनानुसार उन्हें जीवंधरकी प्राप्ति होती है और घर पर आकर पुत्रको सुनंदा शेठनीको देते हैं। जीवंधरकुमार चंद्रमाकी भांति वृद्धि होने लगे। आर्यनंदी नामक मुनि भस्मक नामक रोगके शमन हेतु गंधोत्कट सेठकी भोजनशालामें आकर सारा भोजन खा लेते है फिर भी तृप्ति न होने पर जीवंधर अपने भोजनमेंसे कुछ भोजन देते है जिसका एक ग्रास खाने पर उनका रोग शमन हो गया फलरूप आर्यनंदी प्रत्युपकार हेतु जीवंधरको विद्वान बनानेका निर्णय करते है। पुण्योदयसे जीवंधर स्वयंवरमें गंधर्वदत्ताको जीत लेते है। एकबार एक कुत्तेने यज्ञसामग्री झूठी कर दी तो लोग उसे मार रहे थे उस समय जीवंधर उसे णमोकार मंत्र सुनाते है फलस्वरूप वह मरकर यक्ष होता है और मुश्किल समयमें स्मरण करने पर उपस्थित हो जाऊंगा ऐसा वचन देते है..... आगे..

इधर जलक्रीड़ा के लिये दो सखियाँ सुरमंजरी और गुणमाला भी आयी हुई थीं, उनके पास अपना-अपना एक विशेष प्रकारका चूर्ण था। जिसकी श्रेष्ठता पर दोनोंमें आपसमें विवाद हो गया। विवाद समाप्त करने हेतु यह तय हुआ कि जिसका चूर्ण अनुत्कृष्ट होगा, वह नदीमें स्नान किये बिना ही लौट जायेगी। चूर्णका अनेक परीक्षकोंने परीक्षण किया पर कोई सही निर्णय पर नहीं पहुँच सका। अंतमें जीवन्धरकुमारने प्रत्यक्ष परीक्षण कर गुणमालाके चन्द्रोदय नामक चूर्णको सर्वोत्तम सिद्ध कर दिया। निर्णय जानकर सुरमंजरी अत्यन्त दुःखी हुई। गुणमालाके अनुनय-विनय करने पर भी स्नान किये बिना ही घर वापिस चली गई।

गुणमाला नदीमें स्नान करनेके पश्चात् जब घर लौट रही थी। तब वह मार्गमें एक मदोन्मत्त हाथीके घेरेमें आ गयी। यह देखकर जीवन्धरकुमारने अपने कुण्डलसे ताडित कर हाथीको वश में कर लिया और गुणमालाको संकटसे मुक्त किया। सहज ही गुणमाला और

शुभ और अशुभ अनेकविध, के कर्म पूरव जो किये।
उनसे निवर्ते आत्मको, वह आतमा प्रतिक्रमण है॥३८३॥

जीवन्धरकुमारमें परस्पर स्नेह हो गया। अतः उनके माता-पिताने उन दोनोंका उत्साहपूर्वक विवाह संपन्न करा दिया।

कुण्डल द्वारा हाथीको वश करनेके कारण काष्ठांगार जीवन्धरसे बहुत अप्रसन्न-क्रोधित था; क्योंकि वह मदोन्मत्त हाथी उसका था और अपमानित हाथीने खाना-पीना छोड़ दिया था। काष्ठांगारने जीवन्धरकुमारको बन्दी बनानेके लिए गन्धोत्कटके घर पर सेना भेजी। जीवन्धरकुमारने सेनासे युद्ध करना चाहा; किन्तु सेठ गन्धोत्कटने जीवन्धरकुमारको युद्ध करनेसे रोक दिया और उन्होंने स्वयं जीवन्धरकुमारके हाथ बांधकर काष्ठांगारके पास भेज दिया। जीवन्धरकुमारके हाथ बंधे हुए देखकर भी क्रोधी काष्ठांगारने जीवन्धरकुमारको मारनेके लिये सेनाको आदेशित किया। जीवन्धरकुमारने यक्षेन्द्रका स्मरण किया। स्मरण करते ही यक्षेन्द्र वहाँ उपस्थित हुआ और जीवन्धरकुमारको अपने साथ चंद्रदय पर्वत पर ले गया और वहाँ उनका विशेष आदर सत्कार किया। उन्हें निम्न तीव मंत्र दिये प्रथम मंत्रमें–इच्छानुसार वेष बदलनेकी शक्ति थी। दूसरे मंत्रमें–मनमोहक गाना गानेकी शक्ति थी तथा तीसरे मंत्रमें–हलाहल विषको दूर करनेकी शक्ति थी। और कहा कि–''आप एक वर्षमें अपना राज्य प्राप्त करोगे और राज्य सुख भोगकर इसी भवसे मोक्ष प्राप्त करोगे।''

चंद्रोदय पर्वतसे जीवन्धरकुमार तीर्थवंदनाको निकले, मार्गमें क्या देखते हैं कि एक जंगलमें भयंकर दावाग्नि लगी हुई है, उसमें हाथियोंके समूहको जलते हुए देखकर उन्हें उनकी रक्षाका भाव उत्पन्न हुआ। पुण्यपुरुष जीवन्धरकुमारकी भावनानुसार तथा हाथियोंके पुण्योदयानुसार उसी समय मूसलाधार वर्षा हुई, जिससे हाथियोंकी रक्षा हो गई। सत्य ही कहा है कि–''पुण्यवानकी इच्छा सफल ही होती है।''

तीर्थवंदना करते हुए जीवन्धरकुमार चन्द्राभा नगरी पहुँचे। वहाँ के राजा धनमित्रकी पुत्री पद्मा सर्पदंशसे मरणासन्न अवस्थामें थी। जीवन्धरने 'विषहान मंत्र'से राजकुमारी पद्माको सर्पविषसे मुक्त किया। राजा धनमित्रने प्रसन्न होकर जीवन्धरकुमारको आधा राज्य दिया एवं राजकुमारी पद्माका उससे विवाह कर दिया।

इस प्रकार जीवन्धरकुमारने यक्षेन्द्रसे प्राप्त मंत्र शक्तियोंका सदुपयोग करके परोपकारका कार्य ही किया। हमें भी ऐसा ही करना चाहिये, न तो उससे गर्व करना चाहिये

शुभ अरु अशुभ भावी करमका बन्ध हो जिस भावमें।
उससे निवर्तन जो करे वह आतमा पच्चखाण है॥३८४॥

और ना ही उसका दुरुपयोग करना चाहिये।

चन्द्राभा नगरीसे तीर्थवंदना करते हुए जीवन्धरकुमार एक तापसी लोगोंके आश्रममें पहुँचे। वहाँ मिथ्यातप करते हुए तपस्वियोंको देखकर जीवन्धरको करुणा उत्पन्न हुई। उन्होंने उन तपस्वियोंको वस्तुस्वरूपका यथार्थज्ञान कराया एवं उन्हेम जिनधर्ममें प्रवृत्त किया।

आगे तीर्थ वन्दना करते हुए जीवन्धरकुमार दक्षिण देशके एक सहस्रकूट जिनमन्दिरमें पहुँचे। उस मन्दिरके किवाड़ अनेक वर्षोंसे बन्द थे। जीवन्धरकुमारने मात्र भगवानकी स्तुति प्रारम्भ की और मन्दिरके द्वार स्वयं ही खुल गये।

मन्दिरके सामने बैठा हुआ पहरेदार जीवन्धरकुमारके पास आया और बोला—''हे भाग्यवान् ! इस क्षेमपुरी नगरीमें सेठ सुभद्र रहते हैं, मैं उनका गुणभद्र नामका नौकर हूँ। सेठ सुभद्रके क्षेमश्री नामकी एक कन्या है। ''ज्योतिषियोंने उसके जन्म समय ही बताया था कि जिन भाग्यवान पुरुषके आने पर इस मंदिरके किवाड़ स्वयं खुलेंगे, वही क्षेमश्रीके पति होंगे।'' अतः आप कृपया यहीं रुकिये, मैं शीघ्र ही सेठजीको यह शुभ समाचार देकर आता हूँ।''

समाचार मिलते ही सेठ सुभद्र मंदिरमें आकर जीवन्धरकुमारसे मिलते हैं, सेठजीको मात्र उन्हें देखते ही उनकी विशेषताएँ ज्ञानमें आ जाती हैं। वे जीवन्धरकुमारके साथ अपनी पुत्री क्षेमश्रीका विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न करा देते हैं।

(क्रमशः) ✻

शुभ और अशुभ अनेकविध हैं उदित जो इस कालमें।
उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव है॥३८५॥

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१९वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

✻ इस वर्ष भादों माहका पर्युषणपर्व ज्ञानवैराग्यभीनी तत्त्वोपासना, मुनीन्द्रमहिमा, पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी उपकारमहिमाकी दृष्टिसे प्रभावनापूर्ण रहा। पर्युषणपर्व आराधनाके लिये बाहरगाँवसे अनेक मुमुक्षु महेमान पधारे थे। विधानपूजाके समय विशाल परमागममन्दिर एवं प्रवचनके समय स्वाध्यायमंदिर भर जाता था। क्षमावणीपर्वके दिन, इस साधनातीर्थकी पवित्र यात्रा एवं पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य बहिनश्रीके प्रति क्षमावणी स्तुतिपूर्वक क्षमायाचनाके लिये अन्य गाँवोंसे अधिक संख्यामें मुमुक्षु महानुभाव पधारे थे।

❀ **'समयसार गुर्जरभाषा अनुवाद' पूर्णाहुतिका वार्षिक दिन-विजयादशमी :** श्री समयसार परमागमका गुर्जर भाषा अनुवादकी पूर्णाहूतिका वार्षिक दिन, आसो शुक्ल दशमी (विजयादशमी) ता. २४-१०-२०२३ मंगलवारके रोज ग्रंथाधिराज श्री समयसारकी, विशेष भक्तिपूर्वक मनाया जायेगा।

(पृष्ठ १७ का शेष भाग) (छहढाला - प्रवचन)

(७) आत्माकी पूर्ण शुद्धता होने पर आकुलताका सर्वथा अभाव होना और कर्मोंसे आत्माको पृथक् हो जाना वह मोक्षतत्त्व है। वह पूर्ण सुखरूप है।

इस प्रकार सात तत्त्वोंको पहिचानकर उसमेंसे सम्यग्दर्शनादि सुखके कारणोंको ग्रहण करना और दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वादिको छोडना, इसलिये यह उपदेश है। ऐसा यथार्थ तत्त्वश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन है, और सम्यग्दर्शन ही मोक्षका मूल है। (क्रमशः) ✻

श्री दादर दिगम्बर मुमुक्षु मंडल (मुंबई) द्वारा आयोजित

प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्रीका ११०वाँ मंगल जन्मोत्सव सानंद संपन्न

(ता. २८-८-२०२३, सोमवारसे ता. १-९-२०२३, शुक्रवार)

हमारे परम तारणहार पूज्य गुरुदेवश्री एवं भगवती माता पूज्य बहिनश्रीके अध्यात्म-साधनातीर्थ सुवर्णपुरीमें श्री दादर दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल (मुंबई) द्वारा आयोजित प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीका ११०वाँ महामंगलकारी जन्मोत्सव अत्यंत हर्षोल्लास सह मनाया गया। महोत्सवके प्रथम दिन सुवर्णपुरी प्रातः पूज्य गुरुदेवश्रीके मांगलिक और पूज्य बहिनश्रीकी विडियो तत्त्वचर्चासे महोत्सवका शुभारंभ हुआ।

उत्सवका दैनिक कार्यक्रम

जन्मजयंती उत्सवमें श्री जम्बूद्वीपस्थ शाश्वत जिनमंदिर जिनबिंब विधान पूजाका आयोजन पूजन मंडपमें निर्मापित होनेवाले जम्बूद्वीपकी रचना दर्शाता हुआ आकर्षक जम्बूद्वीपका मांडला बनाया गया था और विधि अध्यक्षके रूपमें चारों दिशामें चार भगवानको विराजमान किया गया था। आयोजक द्वारा मुमुक्षु हेतु पूजनकी बहुत ही सुंदर उचित व्यवस्था की गई थी।

महोत्सवके दिनोंमें प्रात ६.०० से ६.२० पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा, ७.४५ से ८-४५ श्री जम्बूद्वीप पूजा, ९.०० से १०.०० पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री समयसार पर सीडी प्रवचन, पश्चात् पूज्य बहिनश्रीकी भक्ति, प्रासंगिक घोषणा, तत्पश्चात् विद्वान द्वारा धार्मिक शिक्षणवर्ग, दोपहरमें पूज्य छहढाला पर प्रवचन, श्री जिनेन्द्र भक्ति, शामको सांजीभक्ति, रात्रिको ७-४५ से ८-४५ बहिनश्रीके वचनामृत पर गुरुदेवश्रीका प्रवचन पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम इस प्रकार सुचारुरूपसे चलते थे। सांस्कृतिक कार्यक्रममें चौथे दिन दादर मंडल द्वारा तैयार किया गया नाटक 'जैन रामायण' अति भव्यरूपसे प्रस्तुत किया गया था।

महोत्सवके चौथे दिन श्री धातकीखंडके भावि तीर्थंकर भगवानकी रथयात्राका आयोजन किया गया था।

परमोपकारी प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्रीके महामंगलकारी जन्मदिनको पूज्य बहिनश्रीकी प्रतिकृतिको चंपाके फूलोंसे सजाई गई कमानोंमेंसे स्टेज पर लाया गया। पश्चात् बहिनश्रीकी बधाईका कार्यक्रम हुआ था जिसमें मुमुक्षुओंने हर्षोल्लास सह बहिनश्रीकी बधाई की थी।

महोत्सव मनानेका आयोजक श्री दादर दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलका उत्साह प्रशंसनीय था।

श्री कहानगुरुदेवाय नमः श्री आदिनाथाय नमः श्री भगवतीमाताय नमः

अपूर्व अवसर

श्री जम्बूद्वीप-बाहुबली जिनायतन
प्रोजेक्ट चोरस फूट (स्कवेर फूट) योजना

साधर्मी मुमुक्षु, जय जिनेन्द्र

आपको सूचित करते हमें अति प्रसन्नता होती है कि साधनाभूमि सुवर्णपुरी सोनगढमें श्री बाहुबली मुनिराज, विधिनायक श्री आदिनाथ भगवान, स्फटिकमणिके श्री सीमंधर भगवान, चार बालयति तीर्थंकर भगवान, श्री पार्श्वनाथ भगवान, श्री सीमंधर भगवान तथा धातकीखंड भाविके श्री तीर्थंकर भगवान तथा जम्बूद्वीपके १३० भगवंतोंकी प्रतिष्ठा हेतु श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव ता. १९ जनवरी,२०२४ से ता. २५ जनवरी २०२४ तक आयोजित किया जा रहा है।

इस महोत्सवमें देश-विदेशके सभी मुमुक्षु भाई-बहिन अपना योगदान एवं अनुमोदन कर सके– इस भावनासे निम्नोक्त योजनाका संचालन किया जा रहा है।

जम्बूद्वीप और बाहुबली जिनायतनकी संपूर्ण रचनाका निर्माण अंदाजित ६५,००० चोरस फूटमें किया जा रहा है। आप भी इस जिनायतनमें शामिल होकर अपनी अनुमोदना कर सकते हैं। इस भावनासे प्रति चोरस फूट रुपये २५००/-की दानराशी निर्धारित की गई है। रुपये २५००/-की दानराशी पर आपको एक कूपन दिया जायेगा और उसका ड्रो प्रतिष्ठा महोत्सवके दौरान किया जायेगा। जम्बूद्वीपमें दो जिनेन्द्र भगवंतोंकी प्रतिष्ठा करनेका लाभ इस ड्रो द्वारा निश्चित किया जायेगा। जिनप्रतिमाको विराजमान करनेका सौभाग्य पाँच भाग्यशाली मुमुक्षु परिवार (परिवारमेंसे दो व्यक्ति)को प्राप्त होगा अन्य द्वारा अनुमोदना की जायेगी। यह कूपन आपके मंदिरमें दिया गया है। इस कूपनको प्रतिष्ठा तक सुरक्षित रखें।

Bank information for Depositing Donations for Jambudweep-Bahubali Jinayatan Project
Square Feet Scheme and other Schemes :
Account Name : Dig Jain Swadhyay Mandir Trust-Songadh
Bank Name : HDFC Bank | Branch : Sihor Branch
Account No : 50100637052286 | IFSC Code : HDFC0002144
Please send your Name, Address, Payment Details and Screenshot of the Payment on following number for the coupon receipt

Phone No : 77 0000 6346

लि.

श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति, सोनगढ

(१२२)

प्रौढ व्यक्तिके लिए प्रश्नोत्तर

(नीचे दिये गये प्रश्नोंके उत्तर जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला भाग-1-2के प्रकरण-4मेंसे मिलेंगे)

(1) चारों अभाव ..... लागु पड़ते है।

(2) सिद्धदशा और संसारदशाका अभाव वह ..... है।

(3) एक द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका उसी द्रव्यकी आगामी (भविष्यकी) पर्यायमें अभाव उसको ..... कहते है।

(4) कुंभार (जीव) और घड़ाके बीच ..... अभाव है।

(5) आत्मा परका कार्य कर सके ऐसा माननेवालेने ..... अभावको नहीं माना।

(6) परस्पर पुद्गल द्रव्यके वर्तमान पर्यायमें ही ..... अभाव लागु पड़ता है।

(7) एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें नहीं होना उसको ..... कहते हैं।

(8) अत्यंताभाव ..... द्रव्योंमें लागु पड़ता हैं।

(9) जीव परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको अनुकूल अथवा प्रतिकूल माने वह ..... अभावको भूलता है।

(10) तैजस शरीर और कार्माण शरीरके बीच ..... अभाव होता है।

(11) वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव उसको ..... कहते है।

(12) दूध-दहीं और छाछके बीच ..... अभाव होता है।

(13) एक ही द्रव्यकी पर्यायमें लागु पडे वह (1) ..... भाव और (2) ..... भाव होता है।

(14) शरीर और वस्त्रके बीच ..... अभाव होता है।

(15) अभावके भेद (1) ..... (2) ..... (3) ..... (4) ..... है।

(16) चश्मा और ज्ञानके बीच ..... अभाव होता है।

(17) चार अभावमें ..... वह द्रव्यसूचक है और बाकीके (1) ..... (2) ..... (3) ..... पर्यायसूचक है।

(18) एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें (त्रिकाल) अभाव होता है उसे ..... अभाव कहते हैं।

(19) कर्म उदयसे जीवको रागादि होता है ऐसा माननार दोनों द्रव्योंके बीच ..... अभावको भूलता है।

(20) इच्छा और भाषाके बीच ..... अभाव है।

प्रौढ़के लिये दिये गये
सितम्बर-२०२३के प्रश्नोंके उत्तर

(1) आकाश
(2) पुरुषार्थ
(3) मुनि
(4) जूनागढ
(5) थलचर
(6) स्त्री
(7) करोड़
(8) जीव
(9) अगुरुलघुत्व
(10) तप
(11) व्यंजन
(12) देशघाति प्रकृति
(13) शुक्ल
(14) पुरुष
(15) भावलिंगी मुनि
(16) आठ
(17) मांगीतुंगी
(18) ध्रौव्य
(19) विपाक
(20) भोगभूमि

बालकोंके लिये दिये गये
सितम्बर - २०२३ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) सिद्धालय स्वरूप
(२) सिद्ध समजे
(३) शुभभाव
(४) सम्यग्दर्शन
सम्यग्ज्ञान
सम्यग्चारित्र
(५) अज्ञानी मुनि
(६) मिथ्यात्व
(७) पत्थरकी नौका
स्वयं
(८) सच्चा कल्याण
(९) परमेष्ठि
(१०) मिथ्यात्व
(११) वीतराग
(१२) राग वीतराग
(१३) मिथ्यादृष्टि
(१४) शुद्ध स्वरूप
(१५) वीतराग
(१६) गृहीत मिथ्यात्व
(१७) निर्ग्रंथ मुनि
नरक
(१८) महावीर दर्शनशुद्धि
(१९) सर्वज्ञ वीतराग
(२०) सर्वज्ञ वीतराग

(१२२)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

नीचे दिये गये प्रश्नोंके उत्तर छढाला ढाल-2में से मिलेंगे।

(१) जिनप्रतिमा ..... भाखी आगम मांय।

(२) ..... संपूर्ण जगतको जाने फिर भी किसीका कार्य करे नहीं।

(३) सर्वज्ञदेवने कही हुई वस्तु ..... रूप है।

(४) ..... और ..... की भिन्नताका ज्ञान वह वास्तविक ज्ञान है।

(५) ..... का अनुभव करे तब ज्ञान चेतना जागृत हो।

(६) जैन शास्त्रोंका सार .....

(७) परम ..... भाव आदर करने योग्य है।

(८) शुद्ध ..... से ही मोक्ष मिलता है।

(९) चारित्रवंत मुनिराज ..... प्रभुके पडोशी है।

(१०) ..... का हित करनेका यह अवसर है।

(११) ..... को प्रगट करे तो पूर्ण सुख प्रगट हो।

(१२) हे जीव ! अब तू ..... हितके पंथ पर चल।

(१३) निगोदका जीव एक श्वासमें ..... भव करता हैं।

(१४) आत्मामें चारित्रदशा हुए बिना ..... नहीं होता।

(१५) परद्रव्यमें इष्ट-अनिष्टपना मानना वह ..... है।

(१६) कर्मका खिरना वह ..... है।

(१७) स्वर्गका सुख और मोक्षका सुख ..... नहीं है।

(१८) ....., ..., ... वह जीवके हितका पंथ है।

(१९) जीवको दुःखका कारण मिथ्या ....., ..., ... हैं।

(२०) जिसमें ..... न हो उसे सुख कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

● त्रिकाली-द्रव्यके आश्रयसे ही धर्म होता है - प्रथम यह निर्णय हो जाना चाहिए। भले ही अभी अनुभव तक पहुँच न पाए, परन्तु उसके संस्कार तो रोपने ही चाहिए; ताकि स्वयंके पर-ओर झुकनेवाले भावोंका अनुमोदन न हो। ५८८।

● प्रश्न :–(पूर्वके) पुण्यसे मिलनेवाले धनको पाप कैसे बतलाया है?

उत्तर :- धनको दस परिग्रहोंमें गिना है, इस अपेक्षासे पाप बतलाया है। परन्तु वास्तवमें तो धन भी ज्ञेय ही है, उसको अपना मानकर ममत्व करना सो पाप है। उसे पापमें धन निमित्त है, अतः उसे भी पाप कहा है। ५९०।

● प्रश्न :–निश्चयनय और व्यबहारमें विरोध है या मैत्री?

उत्तर :–निश्चयनय और व्यवहारनयमें है तो विरोध; परन्तु साथमें रहनेकी अपेक्षासे मैत्री भी कहलाती है। जैस सम्यगदर्शन और मिथ्यादर्शनके साथ रहनेमें विरोध है; निश्चय और व्यवहारमे वैसा विरोध नहीं है। साथ रहते है, अतः मैत्री कहलाती है। ५९१।

● प्रश्न :–सम्यग्दृष्टि मोक्ष प्राप्तिका प्रयत्न करते हैं अथवा मुक्तिकी पर्यायको आना हो तो आवे?

उत्तर :–सम्यग्दृष्टि मोक्ष-प्राप्तिका प्रयत्न करते हैं, पुरुषार्थ करते हैं, तथा मुक्तिकी पर्यायको आना हो तो आवे; अर्थात् उसकी दृष्टि मात्र द्रव्य पर ही होनेसे मुक्तिकी पर्याय तो (अवश्य) आने वाली ही है। ५९२।

● सिद्ध भगवानमें जैसी सर्वज्ञता, जैसी प्रभुता, जैसा अतीन्द्रिय-आनन्द और जैसा आत्मवीर्य है; वैसी ही सर्वज्ञता-प्रभुता-आनन्द और वीर्यशक्ति तेरे आत्मामें भी भरी है। भाई, एक बार हर्षित तो हो कि अहो! मेरा आत्मा ऐसा परमात्म-स्वरूप है। ज्ञानानन्द-शक्तिसे भरपूर है। मेरे आत्माकी शक्ति खो नहीं गयी है। अरेरे! मैं हीन हो गया हूँ, विकारी हो गया हूँ, अब मेरा क्या होगा? –ऐसे न डर, बेचैन न हो, हताश न हो। एक बार स्वभावके प्रति उत्साह ला। स्वभावकी महिमा लाकर अपनी शक्तिको उछाल। ५९३।

३६
आत्मधर्म
अक्टूबर-२०२३
अंक-२ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-10-2023
Posted on 5-10-2023

Registered Regn. No. BVR-368/2021-2023
Renewed upto 31-12-2023
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org